मीरा सीकरी

बलात्कार

तथा

अन्य कहानियाँ

अभिव्यंजना : नयी दिल्ली

सूरज कहीं झांका होगा, थोड़ी धुंधली सी उजास थी या कॉटेजिस की बाहर जलती बत्तियों का उजाला या फिर घड़ी की सुई का पौने छः बजाना—मुझे लगा पगडंडी अब नजर आ रही है—अब दीदी की कॉटेज में जाया जा सकता है। पर अपनी कॉटेज से दूसरे टीले की पगडंडी पर चढ़ी ही थी कि दूर से कुत्ते या हिरण का सा आभास हुआ—वह गीदड़, लक्कड़बग्घा या कोई और जानवर भी तो हो सकता है—फिर वापिस आ गई थी—दिल की धड़कन बढ़ गई थी, फिर बालकनी पर चढ़ कुर्सी पर बैठ गई—सोचा कोई जानवर पास तक पहुँचा तो संकोच-शर्म छोड़, दरवाजा खटखटा दूँगी।

बिजली की रोशनी फीकी पड़ रही थी और अंधेरे में काट आ गई थी। उसके साथ मन में साहस भी। एक बार फिर अपने कदमों को पगडंडी तक ले गई। रात को जो रास्ता गीला गिजगिजा सा लग रहा था, इस समय अपने सुन्दर उतार-चढ़ाव को दिखाता अपने आकर्षक आकार-प्रकार में मुग्ध कर रहा था—चारों तरफ हरी घास, पेड़ और उनके बीच में जगह-जगह उठे टीलों के साथ लकड़ी की कॉटेजिस बहुत सुन्दर लग रही थीं। टीले से उतरी ही थी कि 'नेल्सन' कॉटेज दिखाई दी, अब कोई भय की बात नहीं, 'बेटियन' भी पास ही होगी, वाकई अगले घुमाव पर बेटियन थी। दरवाजे पर जाकर फिर अटक गई थी—दरवाजा खटखटाऊं या नहीं? हिचक ने हाथ रोक दिया ाि—फिर नीचे उतर आई थी—नजर गई, यहाँ तो एकदम सामने नदी थी-नदी क्या खड्ड थी जंगली झाड़ियों से घिरी—पत्थरों से अटी, इसीलिए पानी की आवाज भी दूर तक जा रही थी, फिल्मों में ऐसी खड्डों में ही तो जानवर पानी पीने आते हैं—मैं नदी से फिर भाग आई थी कॉटेज पर और इस बार मैंने दरवाजा खटखटा दिया था—थोड़ी देर बाद अन्दर से "कौन, कौन" की आवाज के उत्तर में मेने कहा था—"मैं हूँ।" मेरा बेहूदा दिमाग अभी भी सोच रहा था जैसे दीदी मेरा ही इन्तजार कर रही होंगी—मीठी नींद की खुमारी में उन्होंने दरवाजा खोला था—उबासी लेते और फिर बिस्तर की तरफ बढ़ते हुए वह पूछ रही थीं—"क्या वक्त हुआ है—दिन चढ़ गया?"

जवाब में मै सामने चुप खड़ी थी—न बीती रात की मानिंद—मेरे सामने था रात में बन गया दीदी का घर—मुंह पर ओढ़े जीजा जी—टोकरी में पड़ा नैरोबी से आया सामान—रात को उतारे कपड़े—पलंग के नीचे पड़े जूते—बंद कमरे की बासी गर्माहट—उस खट्टी गर्माहट में मुझे लगा मैं अनधिकार कदम रख रही हूँ—बाहर लग रहा था कॉटेज पहुँचते ही टॉयलेट जाऊँगी—पर अब दरवाजे की देहली पर खड़ी मैं दीदी से कह रही थी—"किचन तो बाहर है न यहाँ—जरा चाभी दे दो, चाय बना लूँ—तुम भी पिओगी न?"

"चल तुझे सामान बता दूँ पर माचिस तो है नहीं, तेरे पास है?"

"यहाँ के गैस ऑटोमैटिक हैं—नॉब्ज को दबाते ही सुलग उठते हैं।" कहते हुए मैं बाहर आ गई थी—किचन का सामान दिखा दीदी फिर कमरे में चली गई थीं—गैस पर पानी चढ़ा दिया था मैंने—तेज आँच पर होने से खदबदाहट भी शुरू हो गई थी उसमें—पर चाय की तलब ठंडी हो गई थी। पर कुछ था जो बिना गटके ही स्वतः गटका जा रहा था।

बलात्कार

•

अधखुली नींद की सी हालत में उसे लग रहा था जैसे वह सपना देख रही है। पर घंटी की आवाज़ जब बंद होने पर नहीं आई तो उसे अहसास हुआ कि यह सपना नहीं, यथार्थ है। पास मेज पर रक्खे फोन की घंटी लगातार टनटना रही थी। नींद को किनारे करते हुए फोन के रिसीवर को उठाने के साथ-साथ उसकी नजर घड़ी पर पड़ी—साढ़े पाँच बज रहे थे। इतनी सुबह का फोन, सब कुछ सब कोई ठीकठाक हो—बृजेन पास में सो रहे थे और अमोघ भी अपने कमरे में सो रहा है—उनींदेपन में भी तसल्ली सी हुई उसे—हलो कहने पर भी दूसरी तरफ से जब कोई आवाज़ नहीं आई, या हल्की फुसफुसाहट जिसको उसने समझा नहीं की खीझ में वह कहने जा रही थी, कि आपसे गलत नम्बर मिल गया लगता है कि दूसरी तरफ से बेचैन, विकल, थकी सी आवाज कह रही थी—

"आन्टी फोन बन्द नहीं कीजिए—मैं सोमा बुआ के यहाँ से बोल रही हूँ-आप जल्दी से जल्दी यहाँ चली आइये—सोमा बुआ....."

फिर सुबकने की आवाज। आवाज़ उसने पहचान ली थी। वह केतकी की आवाज़ थी। सोमा की भतीजी।

"केतकी, क्या हुआ है बच्चे, ठीक से बताओ?"

"आन्टी बस आप आ जाइये—पता नहीं सोमा बुआ को क्या हुआ है। मालूम नहीं वह हैं या...."

केतकी का रोना फिर शुरू हो गया था। उसने बस इतना ही कहा—

"अच्छा मैं पहुँच रही हूँ, एकदम।"

उसने बृजेन को जगाया नहीं, बस एक नोट उसके लिए लिख फोन के नीचे रख दिया—

"मेरी मित्र सोमा के यहाँ कुछ अघटित घटा है—सिद्धार्थ एन्क्लेव, कोशिश करूंगी फोन पर तुम्हें सब बता सकूँ।"

जल्दी से जल्दी निकलने पर भी जब वह सिद्धार्थ एन्क्लेव सोमा के घर पहुँची तो साढ़े छः बज रहे थे। पर मार्च के महीने में सात बजे तक भी खुला दिन नहीं चढ़ पाता। सीढ़ियाँ चढ़ कर जब वह सोमा के घर पहुंची तो उसने देखा दरवाजा खुला हुआ है और केतकी के पास एक दम्पती मौजूद है—उसके पीछे-पीछे ही शायद सोमा के घर काम करने वाली माई भी आ खड़ी हुई थी और उससे पूछ रही थी—

क्या हुआ बीजी?

"अभी तो मुझे भी पता नहीं है।"

जैसे-तैसे उसने कहा। उसको देखते ही केतकी उससे चिपट गई—उसकी पीठ थपथपाते हुए उपस्थित दम्पती की तरफ उसने प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

"शी इज़ नो मोर।"

पुरुष ने अंग्रेजी में कहा।

"फिर भी आप तसल्ली के लिए डॉक्टर को बुलवा लीजिए।"

केतकी से हाऊसिंग कॉम्प्लेक्स की फोन डायरेक्टरी ले एक डॉक्टर के यहाँ उसने फोन मिलाया—

"डॉक्टर साहेब, नौ नम्बर से बोल रही हूँ। मेहरबानी करके जल्दी आ जाइये प्लीज़, बात यह है....."

हाँ, कार्डियक अरेस्ट हुआ था सोमा को। लगभग पाँच वर्षों से उसका हार्ट-एन्लार्जमेंट का इलाज चल रहा था। जब उसे यह पता चला था तो उसने जानबूझ कर मजाक करते हुए कहा था—

"आगे क्या कम बड़ा दिल था तेरा, जो और एन्लार्ज करवा लिया।"

वह कौन कम थी, उसी तौल पर बोली—

"आजकल खुला दिल किसी को रास नहीं आता—संकुचित रहने की आदत जो हो गई है—यह तो हम ही शाहदिल हैं जो उल्टे-उल्टे काम करने की ताब रखते हैं।"

हाँ, वह बहुत खुले दिल की थी—उतनी ही खुशमिजाज, उतनी ही मुँहफट्ट। उसके बढ़ते मोटापे को देख उसने सोमा से कहा था—

"अब तो अपने पर तरस खा, असली घी के परांठे खाने बन्द कर दे।"

जवाब में वह बोली—

"कौन सा मुझे पति को खुश करना है जो तेरे जैसे सीखची हुआ जाये—अपने को टिपटॉप रखो, घर को टिपटॉप रखो—खुद न हुए, घर घर न हुआ, प्रदर्शनी की चीज हो गए—अपना तो सब कुछ अपने लिए होता है, शो बाजी के लिए नहीं। अपना तो मूल मंत्र है—"घी है तो खाएंगे-गाड़ी है तो चलायेंगे, पर विडम्बना देख मेरी, डॉक्टर के कहने पर मैं सोमा, असली घी की सोंधी गंध को छोड़ मरगिल्ला सफोला खा रही हूँ, अब तू सफोला पर

भी कर्फ्यू लगा।"

हम दोनों स्कूल से लेकर यूनिवर्सिटी तक एक साथ पढ़े थे। सुखद संयोग ही था कि दोनों को एक ही कॉलेज में लैक्चररशिप मिल गई थी। मैंने तो तीन-चार साल नौकरी कर शादी के बाद पति की तेजपुर पोस्टिंग होने पर नौकरी छोड़ दी थी पर वह अभी तक वहीं दिल्ली कॉलेज में पढ़ा रही थी। भारत के विविध शहरों में पोस्टेड होते पति के साथ अन्तिम पोस्टिंग के लए दिल्ली होम टाऊन में आ गए थे। बेटा हमारा बीस वर्ष का हो गया—जिन्दगी का लम्बा दौर गुजर गया, पर सोमा अभी भी वैसी थी, वही की वही—सोमा के भाई ने हमारी ही एक मित्र से शादी की थी पर शादी के दूसरे-तीसरे वर्ष केतकी को जन्म देते, वह नहीं रही थी—सोमा ने शादी नही की थी—असुन्दर होती सोमा तो कोई कहता कि शादी हो नहीं रही होगी पर सोमा तो बुद्धि और सौन्दर्य का प्रतिमान थी—अगर सोचा जाये कि केतकी को संभालने के लिए उसने शादी नहीं की तो वह भी सच नहीं होगा क्योंकि केतकी तो दादी की गोद में लाड़-प्यार से पल रही थी—माँ-बाप भी आखिरी वक्त तक चाहते रहे कि सोमा शादी कर ले ताकि वे चैन से मर सकें—पर सोमा का इन्कार पत्थर पर खिंची लकीर सा था—अमिट। शायद जैसे कुछ लोग जन्म से भोगी प्रवृत्ति के होते हैं वैसे ही कुछ जन्मजात योगी होते हैं—शादी न करने का कारण उससे पूछो तो कोई चटपटा सा जवाब देकर बात आई-गई कर देती थी।

नन्हा सा था अमोघ, उसे मिलने पर खूब प्यार करती थी वह—वह भी उससे छेड़खानी करता जिद करता—

"आन्टी आप शादी करो, मेरे लिए दोस्त लाओ—नहीं तो मैं आपसे नहीं बोलूँगा।"

आँखे तरेरती वह मुझसे पूछती, "यह सब तूने सिखाया होगा अमोघ को—देख दोस्त, मैं जानवर की तरह से स्ट्रेचर पर लेट पाँवों को बंधवा बच्चे पैदा नहीं कर सकती—मैं अपने ही विरोधों का शिकार हूँ। बच्चे मुझे बहुत अच्छे लगते हैं पर बच्चे पैदा करने अच्छे नहीं लगते, फिर शादी किसलिए? फिर केतकी और अमोघ क्या मेरे नहीं? शायद मेरा मन किसी भी पुरुष के प्रति समर्पित होने के लिए तैयार ही नहीं होता।"

ठीक ही कहती होगी सोमा—यूँ पुरुषों के बीच में वह सहज और अकुंठित व्यवहार करती थी पर एक मर्यादित दूरी और अपनी गंभीरता निरन्तर बनाये रखती। पुरुषों के बीच में कभी उसे अस्तव्यस्त कपड़ों या बेध्यानी में भी नंगी उघड़ी हालत में नहीं देखा—अपने रख-रखाव के प्रति सहज होते हुए भी सदा सतर्क रही। एक उम्र तक सोमा को विवाह के लिए मनाने में माँ-बाप प्रयत्नशील रहे पर एक पढ़ी-लिखी समझदार आत्मनिर्भर महिला से कोई जबरदस्ती तो नहीं कर सकता। अन्तिम समय में माँ-बाप को यही तसल्ली थी—कम से कम दोनों भाई-बहिन इकट्ठे हैं—एक दूसरे का सहारा तो बने रहेंगे।

पर नियति भी कितनी अजीब होती है—माँ की मृत्यु को अभी दो साल भी नहीं बीते थे कि पत्नी की मृत्यु के बाद लगातार दुबले होते गए भाई एक दिन केतकी को सोमा को सौंप इस लोक से विदा हो गए। उनका भी हार्ट फेल हुआ था।

भाई की मृत्यु के बाद केतकी ही सोमा के लिए सब कुछ हो गई थी—अपनी शादी से

लगातार इन्कार करने वाली सोमा चाहती थी कि केतकी की जल्दी से जल्दी शादी हो जाये और केतकी की जिद थी कि बुआ को अकेले छोड़ वह कैसे शादी कर ले—हाँ, अगर कोई ऐसा मिल जाये जो मन से उस घर का होकर रह सके तो वह शादी से इन्कार नहीं करेगी।

वह जब भी दिल्ली आती, दो-एक दिन सोमा के पास जरूर रहती। देर रात तक वे अपनी बातें करती रहतीं। बरसों का अन्तराल एक रात में पाट लिया जाता। उसे अचंभा होता था कि सोमा अभी भी वैसी ही उन्मुक्त और हँसोड़ है—न कोई कुंठा न कोई ग्रंथि। उसके मन में यह शंका होती कि यह इसका दिखावा है या वास्तविकता। एक बार तो उसने पूरी गंभीरता से पूछा था—

"मेरी जिज्ञासा है मोटू, अब तो बता दे कि किसी लव अफेयर में निराश होने की वजह से तूने शादी नहीं की या केतकी के लिए?"

ठहाका लगाकर हँसी थी—"अगर लव अफेयर का नाम दिया जा सकता है इसे तो अपने पेट में उठते उच्चन पेड़ों (जिज्ञासा) को शान्त कर ले—जब पी-एच.डी. कर रही थी तो मेरा गाइड, वही बहुत फ्लावरी भाषा इस्तेमाल करने वाला—हाँ हाँ वही नाजुक-मिजाज मल्होत्रा सर- घंटों मेरी तारीफ करता—मेरे काम की तारीफ करता—अपने डिपार्टमेन्ट के कमरे में घंटों विद्वत्तापूर्ण अच्छी-अच्छी बातें करता—न जाने क्या क्या—इम्प्रैस हुई थी मैं उससे—पर था जोंक—बेचारा—एक बार तो तरस आ गया था मुझे उस पर—पर अपने आप से भी तो विवश थी मैं, गृहस्थी के फ्रेम में अपने आप को रखने में तो मुझे उबकाई आती थी—अगर मेरी शादी की मरजी होती, तो मेरी जैसी मुँहफट्ट क्या शर्म करती? भूल जा दोस्त, यह सोमा संकोची मिट्टी से नहीं बनी पर क्या करूं उस नीली छतरी वाले ने मन ही ऐसा बेढब बना डाला, बाकी सब तो यह मन शायद चला भी लेता पर शादी के साथ झंझट, खासकर एनिमल लेवल, ओह नो—उसके लिए मैं कभी अपने को तैयार न कर सकी।"

"आन्टी, आन्टी" केतकी मेरी बाँह पकड़ कर मुझे झिंझोड़ रही थी, "आन्टी, ग्राउण्ड फ्लोर वाले अंकल पूछ रहे हैं अब क्या करना है?"

केतकी के झिंझोड़ने ने जीवित सोमा को उसकी आँखों से परे हटा दिया था और उसे विकट वास्तविकता के सामने ला खड़ा किया था, जिसे स्वीकार करने के अलावा और कोई रास्ता न था। उन सबने मिलकर पलंग से गद्दे समेत सोमा को उठाकर जमीन पर रख दिया था। न जाने उसे क्या सूझा कि किचन में जाकर आटे का दिया बना, रुई की बत्ती को घी में अच्छी तरह से भिगो, बत्ती को सुलगाकर प्लेट में रख, सोमा के सिरहाने रख दिया। केतकी से कहा, अगरबत्ती सुलगा दे और धीमी सी आवाज में गीता-पाठ का कैसेट लगा दे।

केतकी से सोमा की निजी डायरी ले उससे पूछ-पूछकर कुछ लोगों की लिस्ट बनायी जिन्हें फोन पर सूचना दी जा सकती थी। बृजेन को भी फोन कर दिया कि अमोघ को साथ ले जल्दी से जल्दी यहाँ पहुँचे। कुछ लोगों को केतकी पहले ही फोन कर चुकी थी।

वह सोच रही थी कि बृजेन आ आये तो इस समय के लिए अपेक्षित सामान मँगवा ले। कैसी विडम्बना है कि अवसाद की इस घड़ी में दर्द महसूस करने के लिए भी वक्त नहीं है। अपने

में ही ऊब-डूब रही थी वह कि बाहर से आती विलाप की आवाज से संभली और सोमा के पास से उठकर खड़ी हो गई—

"हाय नी मेरी सुक्खांलद्दी इक्को इक्क भतीजीये- नी तैनुं की हो गया नी हुन्न मैनुं चाची कह के कौन बुलायेगा..."

विलाप करते-करते उन्होंने सोमा के ऊपर अपना सिर मारना और जहाँ-तहाँ चूमना शुरू कर दिया।

"हाय नी तू तां कहंदी सैं आपणे छोटे वीर की शादी आपने हत्थाँ नाल करांगी-नी तू तां ओहदा कारज देक्खे बगैर ई चल्ल दित्ती—नी तेरी जगह मैं मर जांदी..."

किसी तरह से मैंने उनहें वहाँ से उठाया। उठ तो वह गईं—विलाप भी उनका बंद हो गया। विलाप की जगह आदेश ने ले ली। पंजाबी- मिली हिन्दी में कह रही थीं—

"अभी तो सारे किरिया करम करने हैं। पैले कुड़ी को नवाना है—चलो गरम पानी कराओ—नये कपड़े ओहदे वास्ते निकालो—मुरदे लई सारा समान मँगवाओ। मुरदे को जादा वकत घार नई रखते।"

मेरा मन हुआ उनसे कह दूँ, नहला दिया है हमने, पर सबके बीच झूठ बोलने का मन नहीं हुआ। अपना गुस्सा पी रही थी मैं, नौटंकी बाज, कोई और स्थिति होती तो डाँट कर उन्हें एक तरफ करती। किसी तरह से अपने को संयत रखते हुए उनसे कहा—

"आप सब को बाल्कनी में ले जाइये, मैं और केतकी नहला देते हैं," मन में सोच लिया था पहने हुए कपड़ों पर पानी के छींटे देकर ऊपर से एक साड़ी लपेट देंगे। चाची जी की तरह का उघड़ा हुआ नहाना सोमा कहाँ बरदाश्त कर सकती है। वह तो हरद्वार की गंगा तक में कपड़े पहने हुए भी नहाने के लिए तैयार नहीं होती थी। कहती थी—

"वितृष्णा होती है इन औरतों को इस तरह से नहाते हुए देखकर—वल्गर।"

नहाते हुए आनन्दित स्थिति में मैंने पूछा था—

"हम वल्गर लगते हैं तुझे क्या?"

"आई डोन्ट मीन दैट, बट वैल आई कान्ट," और तब उसने टूरिस्ट बंगलों के वेटर से अपने लिए कुर्सी मंगवाई थी और निजी घाट के प्लैटफार्म पर बैठ न जाने हमारी कितनी फोटो ग्राफस ली थीं और हम व्यंग्य के छींटे फेंकती बोली थी—

"अब देखना तस्वीरों में तुम कितनी सुन्दर लगती हो—चिपके हुए गीले कपड़ों वाली अमृता शेरगिल की पेंटिंग्ज?"

और हंसते हुए बंगले की सीढ़ियों की तरफ भाग गई थी।

चाची जी उसी को ऐसे नहलाने के लिए कमर कस रही हैं। साड़ी के पल्लू को कमर में कसते हुए वे मुझसे कह रही थीं—

"नई धीये, तू क्यों नवायेंगी? अपनी बच्ची नूँ मैं नहलावाँगी।"

वे बाथरूम से बाल्टी में पानी ले आई थीं—केतकी से तौलिया, पाऊडर और पर्फ्यूम उन्होंने ले लिया था और हिदायत दी थी कि खुला ब्लाउज़, पेटीकोट और साड़ी निकालकर वह उन्हें

ला दे।

वहाँ बैठे सब लोगों को बाहर भेज दिया था—बस मैं और केतकी चाची जी के सामने बेबस हो रहे थे। केतकी को उन्होंने इशारे से पास बुलाया। समझाया कि पहले धड़ वाले हिस्से को ध ोयेंगे, इसलिए सलवार उतारने में वह उनकी मदद करे। सलवार खुली होने की वजह से उतारने में कोई दिक्कत नहीं हुई पर जब उन्होंने पैन्टी को खींचतान कर उतारने की कोशिश की तो मैं चीख पड़ी—

"चाची जी, पैन्टी पहने ही रहने दीजिये—अब गीले-सूखे से क्या फर्क पड़ना है।"

पर वह कहाँ मानने वाली थीं, केतकी से उन्होंने कहा, "जा कैंची ले आ...।"

कैंची से उन्होंने पैंटी काटी—मेरे दिए पेटीकोट को उन्होंने एक तरफ रख दिया और अब वे कमीज उतारने के लिए दम लगा रही थीं। उतारने में मुश्किल होती देख उन्होंने फिर कैंची ली और कमीज की बांहों को काटा, सामने के हिस्से में पूरा चीरा लगाया। कमीज उतारकर वह विजेता भाव से मुझे देख रही थीं, ब्रेसियर मत उतारिये कहने का भी उनके सामने कोई मतलब नहीं था।

सोमा का किसी के सामने न उघड़ा संगमरमरी बदन चिथड़ों में उघाड़ते हुए उधेड़ा जा रहा था। उसके ऊपर झुकी हुई चाची जी मुझे पिशाचिनी सी लग रही थीं और उनकी इस प्रेत क्रिया के सामने मैं बेबस थी। मुझे सोमा के माथे पर दर्द से जमीं-खुंदी सलवटें नजर आ रही थीं। मैं क्षमा-प्रार्थना कर रही थी—"दोस्त, माफ करना, मैं इस आखिरी वक्त तुम्हारे काम न आ सकी...."

तमाम उम्र दूसरों की आँख से अपनी मुजस्सिम काया को छिपाती सोमा कलाकार की गढ़ी सौन्दर्य प्रतिमा सी पड़ी थी—नंगी उघड़ी—पर बेदाग, अखंडित। नहीं चाची जी कहने का मन नहीं हो रहा उन्हें—दाग दिया था उन्होंने उसके निजीपन में जबरदस्ती घुसपैठ कर उसकी अब तक सुरक्षित मानवीय गरिमा को खंडित कर।

बीमारी की पीड़ा को तो कभी उसने माना ही नहीं था। इस उघड़ेपन से बचने के लिए ही तो वह कभी ऑपरेशन के लिए तैयार नहीं हुई। डॉक्टर करौली को कहे उसके शब्द उसी की आवाज में मैं सुन रही हूँ—

"डॉक्टर साहेब, ऑपरेशन तो मैं नहीं करवाऊँगी—अपने मन को नहीं मना पाती—यूँ आपकी बतायी सारी दवाइयाँ खा रही हूँ, सावधानियाँ बरत रही हूँ—वैसे डॉक्टर, एक बात कहूँ बड़े दिल के साथ जिन्दा रहने का अपना ही मजा है—ऐसे में जिन्दगी साथ छोड़ दे, उससे विदा लेने में भी बिल्कुल डर नहीं क्योंकि मैं नियति पर विश्वास रखती हूँ और साँसों की गिनती को मानती हूँ मैं—मेरे हिस्से की साँस मैं ही लूँगी।"

"हाय किनियाँ सोनियाँ गुलफेदार छातियाँ ने... अकारथ गइयाँ"

तौलिये से सोमा बदन पोंछती चाची की आवाज ने कानों में गूँजती सोमा की आवाज को काट परे फेंका—आँखों ने देखा, पेटीकोट परे पानी में गिरा हुआ था।

मैंने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

प्राप्त—अप्राप्त

•

अस्पताल से अवि का शव लेकर अवि की पत्नी और उसके बेटे के साथ विनीत जब घर पहुंचे तो साढ़े छः ही बजे थे, पर अंधेरा इतना गहरा चुका था कि लग रहा था जैसे देर रात हो गई है। सूरज तो तभी ढल रहा था जब वह माँ को लेकर अस्पताल से घर आई थी हालांकि घड़ी अभी चार ही बजा रही थी।

सुबह अवि की माँ का फोन आया था—दो दिन पहले गॉल ब्लैडर के स्टोन के आपरेशन के लिए अवि गंगाराम में भर्ती हुआ था—लेजर से आपरेशन होना था—मामूली आपरेशन कहा जाता है—पर न जाने क्या कॉम्पलीकेशन हो गई।

इससे आगे उनसे बोला नहीं जा रहा था और उसे लगा, था वह कह रही है—'बस आ जाओ'। यह तो अच्छा हुआ वह विनीत को अपने साथ ले गई। यूं दिल्ली में अट्ठारह-उन्नीस साल हो गए रहते, पर उसे दिल्ली कभी अपनी नहीं लगी। वैसे तो अवि के लिए भी दिल्ली पराई ही थी—पर अब तो अवि ही नहीं....।

ऐसे में अवि के घर का न होते हुए भी, उसका पति होने के नाते उस घर के पुरुष के दायित्व को विनीत को ही निभाना था।

अवि की विधवा माँ ने अपने बलबूते पर भाई-बहन को पाला था—बेटे के दिल्ली में अच्छी तरह से सेटल होने पर, जालंधर से रिटायरमेंट ले वे दिल्ली आ गई थीं—बेटे को इस स्थिति में पड़ा देख वह पत्थर हो रही थीं। अपने पर काबू पा उसने ऋतु (अवि की बहन—अपनी भाभी) को सूचित करने के लिए लखनऊ फोन किया—"ऋतु मैं दिल्ली से बिन्नी बोल रही हूँ—देख मेरी बात सुन-समझ ले—अवि अस्पताल में है—जैसे भी हो सुबह तक पहुंच।"

और उसने बिना उसको सवाल-जवाब करने का मौका दिए फोन बंद कर दिया था। कैसे कहती वह उससे कि अवि इस दुनिया में नहीं रहे—इतना अचानक....।

विनीत चाह रहा था कि वे लोग रात अपने घर चले जाएं पर वह माँ, अवि की पत्नी और